अभियान

जीवन संग्राम में पहला प्रयोजन लक्ष्य, दूसरा प्रयोजन दृढ़ संकल्प एवं तीसरा एकान्त आत्मनियोग है। इन तीनों के संयोग से यदि कोई भी काम किया जाय तो चाहे एकदम फल न दिखे फिर भी शुभ कर्म के संस्कार बीज रूप में संचित रहते हैं। सुयोग पाकर अपने आप ही वे विकसित हो जाते हैं।

बीमारी के बाद फिर तीन साल तक मैंने नौकरी की। एक दिन आश्रम में माँ एक फूल हाथ में लिये उनकी पंखुड़ियाँ तोड़ती हुई मुझसे बोलीं, "तेरे अनेक भाव तो झड़ गये और अनेक अभी बाकी हैं। सब झड़ जाने पर इस फूल के डंठल की तरह केवल सूक्ष्म शक्ति रूप में मैं तेरे भीतर रहूँगी, समझा !" यह कह कर हँसने लगीं। मैं बोला, "माँ ! क्या उपाय करने से वह अवस्था आयेगी" ? माँ बोलीं, "रोज इसी बात को एक बार याद करना, और कुछ नहीं करना होगा।" सचमुच ही चिन्ता नित्य कर्म का ही अंग हो गयी, मेरे चित्त की चंचलता जाती रही और एकाग्रता आती गयी। जब मन इधर-उधर भटकता तो लक्ष्य पर केन्द्रित करने के लिए मन में प्रबल आग्रह होता। इससे मुझे यह विश्वास हो गया कि जप ध्यान और साधन भजन करके मनुष्य जो लाभ करता है वह महात्माओं की सहज वाणी के बल से लाभ किया जा सकता है। छः महीने बाद घूमते-घूमते माँ ने एक दिन कहा, "देख, तेरा कर्मजीवन शेष होने जा रहा है।" मैंने सुना, किन्तु

मन ने उतनी गम्भीरता से नहीं सुना। तब मुझसे श्रीमान् भगवान्चन्द्र ब्रह्मचारी भी प्रायः कहते, "तुम्हें तो भैया लेने के लिए हिमालय से आदमी आ रहा है, प्रस्तुत रहना।" उनका बालसुलभ स्वभाव था, मैं सोचता, शायद वे हँसी कर रहे हैं।

कई महीनों के बाद मैंने चार महीनों की छुट्टी ली। सोचा था किसी पहाड़ पर हवा बदलने के लिए जाऊँगा, इसी बीच १९ वैशाख १३३९ वंगाब्द (२ जून १९३२ ई०) बृहस्पतिवार को साढ़े दस बजे माँ ने श्रीमान् योगेशचन्द्र ब्रह्मचारी को भेज मुझे घर से बुलाया और पूछा, "मेरे साथ चल सकता है ?" मैंने जिज्ञासा की, "कहाँ जाना होगा ?" माँ ने कहा, "जहाँ भी जाऊँ।" मैं चुप रहा। कुछ देर बाद फिर बोलीं, "चुप क्यों हो गया ?" घर पर किसी से कुछ कह कर नहीं आया था। संसारी की तरह बोल पड़ा, "घर से रुपया पैसा तो लाना होगा।" माँ बोलीं "यहीं से जितना संग्रह कर सके कर ले।" मुख से तो अच्छा कह दिया किन्तु मन में मानो पुत्र-परिवार पूछ रहे हैं, "कहाँ जा रहे हो ?"

खैर जो भी हो एक कम्बल, एक रजाई, एक दरी और एक धोती ले मैं, माँ व पिताजी ढाका स्टेशन के लिए रवाना हुए। स्टेशन पर पहुँच माँ ने कहा, यह गाड़ी जहाँ तक जा रही है वहाँ तक के टिकट ले ले।" जगन्नाथगंज तक के टिकट ले लिये गये। दूसरे दिन वहाँ पहुँचने पर माँ बोलीं—"उस पार चल।" उस पार जाकर कटिहार के दो टिकट ले लिये गये। पास में रुपया कम था, अकस्मात् कटिहार स्टेशन पर एक पुराने मित्र से भेंट हो गयी, उन्होंने १००), कुछ फल तथा कुछ खाना दिया। वहाँ से लखनऊ के टिकट लिये। रास्ते में गोरखपुर उतरे। वहाँ

पर गोरखनाथ के मन्दिर में दर्शन कर लखनऊ पहुँचे। अगली गाड़ी देहरादून एक्सप्रेस थी। माँ बोलीं, "जहाँ तक गाड़ी जाय वहाँ के टिकट ले।" दूसरे दिन देहरादून में धर्मशाला में आकर उतरे। नयी जगह, नये आदमी सब कुछ नया। माँ बोलीं, "मुझे तो सब पुराना लग रहा है।" कहाँ जायेंगे कुछ निश्चय नहीं। मैं और पिताजी दोपहर को घूमते-घूमते काली-बाड़ी का नाम सुनकर उस जगह गये, वहाँ जाकर पता लगा कि तीन-चार मील दूर रायपुर गाँव में एक शिवालय है, स्थान निर्जनप्राय है। मन्दिर एकान्त-वास के लिए अच्छा है। घटना-चक्रानुसार एक रायपुर के पण्डित ठीक उसी समय उपस्थित हुए। उनके साथ बात-चीत कर अगले दिन हम रायपुर गये। पिताजी को वह स्थान खूब पसन्द आया। माताजी का मतामत पूछने पर उन्होंने कहा, "तुम लोग देख-भाल लो, मुझे तो सभी अच्छा है।" ८ जून १९३२ ई० बुधवार सुबह १० बजे से उस मन्दिर में माँ और पिताजी रहने लगे।

इसके बाद की घटनाएँ श्री श्री माँ की इच्छा होने पर बाद में प्रकाशित की जायँगी।

●

श्री श्री माँ

श्री श्री माँ के स्वरूप की धारणा करना हमारी बुद्धि की पहुँच के बाहर है। यद्यपि माँ हर समय कहती रहती हैं, "मैं तो तुम लोगों ही की पगली लड़की हूँ।" फिर भी इस पगली लड़की के चलने-फिरने की ओट में, उनके क्रीड़ा-कौतुक के पीछे भागवती शक्ति का मूर्तिमय प्रकाश रहता है।

पश्चिमी मनीषी एमरसन ने कहा है, "संसार में रह कर गृह धर्म अकुण्ठित रूप से निर्वाह करना अथवा निर्जन गिरि कन्दरा में साधन करना सहज है। किन्तु यथार्थ में प्रकृत सत्य और महत्त्व में वे प्रतिष्ठित हैं जो जनता के जीवन के घात-प्रतिघातों में भी निराशा की स्वतन्त्रता और पूर्ण माधुर्य के साथ रह सकते हैं।"

श्री श्री माँ लोक कोलाहल के अशान्त वातावरण में भी रात-दिन रहती हुई, अपने अक्षय आनन्द का भण्डार सबके लिए उन्मुक्त रखती हैं, उनकी निर्मल शान्त दृष्टि, पवित्र हास्युक्त अपूर्व जीवन की स्वच्छन्द गति, प्राणिमात्र की अनेक वासनाओं की पूर्ति करती है। इस कारण उनको विश्वजननी का मूर्तिमय रूप कहना अनुचित न होगा।

माँ को कोई 'साक्षात् भगवती का अवतार' कोई 'जीवन्मुक्ता साधिका माँ' कहता है। हम लोगों को ऐसा लगता है "जिसकी दृष्टि में वे जो हैं, वही हैं।" प्रथम दर्शन में ही उनका

वात्सल्यपूर्ण मधुर भाव स्पन्दन धर्मविमुख प्राणी के हृदय में भी भावान्तर उपस्थित कर देता है । उनके सामीप्य से शुष्क प्राण में भी भगवद्-भाव की स्फूर्ति होती है और मनुष्य का हृदय एक विराट सत्ता के स्पन्दन, अनन्त समुद्र जलोच्छ्वास की तरह आच्छन्न हो जाता है ।

माँ की दीक्षा व गुरुलाभ के विषय में पूछने पर माँ ने कहा था—"बचपन में माता-पिता, गार्हस्थ जीवन में पति एवं सदैव समस्त संसार मेरा गुरु है, लेकिन यह ध्यान रखो कि गुरु कहने से एकमात्र वही हैं, वही ।"

लौकिक दृष्टि से माँ जिस प्रकार आदर्श कन्या, आदर्श स्त्री तथा आदर्श माँ के रूप में सम्मुख आती हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से भी उनकी वाणी में राजयोग की विविध प्रक्रियायें, साधन के विचित्र मार्ग, द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सब स्फुटित होते हैं । कीर्तन में जो उनका भाव देखा गया है उससे उनको परम वैष्णवी कहा जा सकता है; शिव, दुर्गा, काली आदि देवी-देवताओं की पूजा में, तांत्रिक अनुष्ठान में अथवा वैदिक यज्ञादि कर्मनिष्ठा में जो उनकी सहज कुशलता दिखाई देती है, उससे उनको सर्वदेव-देवीमयी परम देवता कहने में अत्युक्ति न होगी ।

साधन आदि किये बिना ही जीवन के आरम्भ ही से नित्यकर्म की तरह जो अलौकिक विभूतियाँ उनके व्यवहार में स्वत: दिखाई पड़ीं, उनके आधार पर माँ को परमयोगी कहा जा सकता है । वैदिक भाषा में सूक्त और स्तव जो उनकी वाणी द्वारा मूर्तिमान हो उठे थे उनको पढ़ने पर उन्हें मंत्र-द्रष्टा ऋषि कहने में कोई दुविधा न होगी ।

ज्ञानमार्ग, भक्तिपथ, कर्मयोग, समाधियोग आदि में उनके स्वत: प्रमाणित तथा अनुभवसिद्ध सिद्धान्तों ने अनेक प्राचीन और प्रवीण प्राच्य और प्रतीच्य दार्शनिकों को आश्चर्यान्वित किया है । ज्ञान, योग, भक्ति आदि विशेष-विशेष खण्ड भावों के साधकों में तथा माँ में यही पार्थक्य है कि माँ में ये सब खण्डभाव सुन्दर समन्वय के साथ प्रकाशित हुए हैं । इन्हीं के द्वारा जीवन मात्र का कल्याण हो रहा है ।

उनकी सुन्दर मधुर मूर्ति, उनका धैर्य, क्षमा, सरलता, तथा चिरआनन्दमय क्रीड़ा-कौतुक, उनकी मङ्गलमयी दृष्टि, समस्त प्राणीमात्र पर करुण कोमल स्वभाव, उनका द्वन्द्व-रहित, इस युग के लिए अभूतपूर्व तथा अनुपम नित्यमुक्त स्वभाव है । उनको साधिका नहीं कहा जा सकता, कारण कि जिन्होंने उन्हें बचपन से अब तक देखा है, वे सभी कहते हैं कि माँ के कर्म और भाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और उनकी साधन-प्रचेष्टा अथवा तपस्या किसी ने भी कभी नहीं देखी है ।

सब अवस्थाओं में सदैव उनके शरीर के जो लौकिक और अलौकिक विभूतियों के दर्शन हुए हैं, वह सब भक्तों के कल्याण के लिए स्वयम् प्रकाशित हुए हैं, उनकी इच्छा अथवा अनिच्छा से नहीं हुए हैं । जलती हुई होमाग्नि में हविधारा दी जाती है तो अग्नि अपने स्वभाव के अनुसार प्रदीप्त हो उठती है, हवि की गन्ध से दिशाएँ पवित्र व आमोदित हो जाती हैं, और थोड़ी देर बाद आहुति का कोई भी चिह्न यज्ञाग्नि में नहीं दीखता, जब कि अग्नि अपनी दीप्ति से साथ जलती ही रहती है । उसी प्रकार श्री माँ को भक्तों द्वारा प्रेमअर्घ्य तथा श्रद्धांजलि अर्पित करने पर माँ का वात्सल्य,

स्नेहातिरेक, उनकी वाणी दृष्टि तथा मुखश्री पर प्रतिभासित हो उठता है एवं दूसरे क्षण ही वह सब उनकी सहज शान्त सौम्य माधुरी मूर्ति में सन्निहित हो जाता है ।

उनमें इच्छा अनिच्छा का द्वन्द्व नहीं है । प्रवृत्ति निवृत्ति का द्वन्द्व भी उनकी इच्छाशक्ति से कभी स्फुरित होता नहीं देखा गया है । विश्व के कल्याण के लिए जो धर्म एवं कर्म हैं उनका मूलाधार सनातन सत्य, जो अनादिकाल से मानव चित्त में स्वयम् प्रकाशित होता आ रहा है, उसी सत्य धर्म की ज्योति माँ के चारों ओर है, उसका आभास व संकेत माँ के सब लौकिक अलौकिक कार्यों द्वारा ही मिल जाता है । माँ के जीवन से यह भली-भाँति दर्शित होता है कि स्वयम् परिपूर्ण रह कर किस प्रकार मनुष्य के सांसारिक व्यवहारों की रक्षा करते हुए अध्यात्म राज्य में स्वाधीन रहा जा सकता है ।

वर्तमान युग की बढ़ती हुई साधु-संन्यासियों की संख्या देखते हुए यह विचार आना स्वाभाविक है कि क्या उन लोगों द्वारा मानव समाज का कुछ कल्याण हो रहा है? गृहधर्म और समाज-धर्म से बाहर जाकर गृह-धर्म और समाज-धर्म का साधनपथ सुगम बनाना कुछ सहज नहीं है । यह ठीक है कि निर्जन गिरिकन्दरा में अनेक वर्षों तक तपस्या कर किसी किसी ने आध्यात्मिक उन्नति-लाभ किया है किन्तु उन लोगों की इस उच्चतम अवस्था द्वारा जनसाधारण के जीवन-क्रम में कोई उन्नति नहीं होती । आश्रमों का निर्माण होता है, उनकी चूड़ा आकाशभेदी बनायी जाती है, पूजा आरती से आश्रम का वातावरण मुखरित किया जाता है, अन्नशालाओं में कंगालों को अन्न बाँटा जाता है,

किन्तु इतने सब अर्थव्यय और परिश्रम से बने आश्रम की भित्ति अपनी प्रेरणा और प्रभाव से समाज में ज्ञान, प्रेम और भक्ति का संचार नहीं कर पाती, वरन् देखा जाता है कि समाज में दिन पर दिन हिंसा, द्वेष तथा कलह की वृद्धि हो रही है, ऐसे समाज में साधन-भजन अबाध गति से नहीं हो सकता । जिस साधन के बल से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की शक्ति प्राप्त हो, जिसके प्रभाव से जीव में ईश्वर-भाव स्फुरित हो, स्वयं अपने को समर्थ बना दूसरे को भी समर्थ बना सके, सारे व्यक्तिगत स्वार्थ निर्मल होकर दूसरे के काम में लगाये जा सकें, ऐसी साधना का क्षेत्र आज दिन पर दिन संकुचित होता जा रहा है ।

श्री श्री माँ का जीवन प्राणिमात्र के मंगल और कल्याण के लिए है, वह अपने समस्त जीवन का भार जनसाधारण को देकर स्वयम् जगत् के कल्याण-साधन में लीन रहती हैं । व्यावहारिक दृष्टि से ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो उनकी निज की हो, सब जगह उनकी जगह, सब जीव उनकी संतान और परिजन हैं । उनकी दृष्टि में सब धर्म केवल उन्हीं की खोज में लगे हैं । वे कहती हैं, "मुझे तो यह संसार एक बाग सा लगता है, तुम सब इस बाग के फूल की तरह खिल रहे हो । मैं इस एक ही बाग में इधर-उधर घूमा करती हूँ ।"

अन्य एक समय उन्होंने कहा "मेरा निज का कुछ कहने या करने का प्रयोजन नहीं है, पहले भी नहीं था, अब भी नहीं है और होगा भी नहीं । जो कुछ प्रकाश पाया, पा रहा है तथा पायेगा, सब तुम्हारे कल्याण ही के लिए हैं, इस शरीर की यदि कुछ निजस्व चीज है तो समस्त संसार ही निजस्व है ।"

सृष्टिलीला की जो अपार विभूति मातृभाव है जिसकी समस्त विश्व में दीप्ति है, उसी अखण्ड मातृभाव का सर्वतोमुखी प्रकाश श्री श्री माँ की सब बातों, कार्यों तथा लौकिक व्यवहारों में मिलता है। भक्तों के निकट छोटी-लड़की का-सा अनुरोध, शरणागत आर्त के प्रति मातृरूप में अभयदान, जिज्ञासु के लिए वाणी रूप में अन्तर्जगत् के सत्य का प्रकाश, सभी कुछ इस महाशक्ति का लीला विलास है।

जगत् के सब धर्मों, सब वर्णों और सब जातियों के प्रति, सब आश्रमों, सब विषयों, सब प्रकार की शिक्षाओं में समान भाव से श्रद्धा और अनुराग प्रदर्शित करती हुई माँ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस महावाक्य को अपने जीवन में ही प्रतिपादित करती हैं। वह कहती हैं "सब धर्मों की एक ही धारा और सब धाराएँ भी एक, हम सब भी एक हैं।" किसी के कभी पूछने पर "आप कौन जातीय हैं ? आपका घर कहाँ है ?" माँ हँसते हुए जवाब देती हैं, 'व्यावहारिक हिसाब से तो यह शरीर पूर्वी बंगाल का तथा जाति से ब्राह्मण है किन्तु इन सब कृत्रिम उपाधियों से अलग करने पर यह शरीर तुम लोगों के परिवार का ही है।"

कभी-कभी माँ को कहते सुना गया है "इस शरीर पर तुम लोग विश्वास रखो। तुम लोगों का अखण्ड विश्वास ही तुम्हारी आँखें खोल देगा।" कभी यों भी कहती हैं "मैं तो कुछ जानती नहीं, तुम लोग जो सुनाओ या सुनना चाहो वही मैं बोलती हूँ।" फिर कभी यों कहती हैं—"यह शरीर तो एक गुड़िया है, तुम जैसा खेलाना चाहते हो वैसे ही खेलते रहते हो।

उनकी इन सब वाणियों से यही विश्वास होता है कि माँ का

शरीर जगत् की मूलाधार प्रच्छन्न मांतृशक्ति का मूर्तिमान रूप है। सृष्टिमय परमात्मा की शक्ति से उनकी सब चेष्टाओं का विकास तथा उन्हीं में लोप होता है। द्वैत-बोध का उनमें लोप हो गया है। वह कभी-कभी कहती हैं "एक मात्र तुम्हीं सब हो तथा एकमात्र मैं ही सब हूँ।"

अन्य एक दिन कहा था, "मैं भी तुम्हीं, एकमात्र वे हैं तभी तो मैं और तुम हैं।" यदि केवल एक बार विश्वास और श्रद्धा से कोई यह बोल सके कि "माँ तुम आओ, तुम्हारे बिना मेरा काम नहीं चल सकता तो माँ सच में आ उसे दर्शन दें तथा अपनी गोदी में ले लें। दुःख की मार थोड़ी देर की है, उन्हें रहस्यमय आश्रय न समझो। याद रखो वह हर समय तुम्हारे पास ही प्राण-शक्ति की तरह विराजित हैं। फूल का जिस प्रकार डण्ठल होता है जीवों का भी उसी रूप में आश्रय हैं। ऐसा भाव लाने से तुम्हें कुछ करना न होगा, वह तुम्हारे सब भार को हल्का कर देंगी।"

●